International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN :2581-9925(Online), Impact Factor: 7.555, Volume 07, No. 04(II), October - December, 2025, pp. 40-44

अपोह की धारणा, स्वरूप तथा सैद्धांतिक विकास : एक पुनर्विलोकन

भीम शंकर मीना*

शोधार्थी, दर्शनशास्त्र विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान।

*Corresponding Author: iambheemshankar18@gmail.com

Citation: भीम शंकर मीना. (2025). अपोह की धारणा, स्वरूप तथा सैद्धांतिक विकास : एक पुनर्विलोकन. International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science, 07(04(II)), 40–44.

सार

बौद्ध न्याय परंपरा में अपोहवाद शब्दार्थ एवं संकल्पना–निर्माण की समस्या के समाधान हेतु विकसित एक केन्द्रीय दार्शनिक सिद्धांत है। इस सिद्धांत के अनुसार शब्द किसी स्वतंत्र सार्वभौमिक सत्ता का बोध न कराते हुए 'अन्य' के निषेध (अपोह) के माध्यम से अपना अर्थ ग्रहण करते हैं। प्रस्तुत शोध–पत्र में बौद्ध न्याय परंपरा के अंतर्गत अपोहवाद के स्वरूप तथा उसके ऐतिहासिक विकास का दार्शनिक मूल्यांकन किया गया है, विशेषतः दिङ्नाग, धर्मकीर्ति, शांतरक्षित, कमलशील एवं रत्नकीर्ति द्वारा प्रतिपादित दृष्टिकोणों के संदर्भ में। अध्ययन के प्रथम चरण में दिङ्नाग द्वारा प्रतिपादित अपोह सिद्धांत की मूल अवधारणा का विश्लेषण किया गया है, जहाँ अपोह को शब्दार्थ–निर्धारण की आधारभूत प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत किया गया है। तत्पश्चात धर्मकीर्ति द्वारा अपोह सिद्धांत के ज्ञानमीमांसात्मक और तर्कशास्त्रीय परिष्कार को स्पष्ट किया गया है, जिसके माध्यम से अपोह को प्रत्यक्ष और अनुमान की संरचना से जोड़ा गया। आगे शांतरक्षित और कमलशील के ग्रंथों में उपलब्ध अपोह संबंधी विवेचन का परीक्षण करते हुए यह दर्शाया गया है कि किस प्रकार उन्होंने बौद्ध न्याय परंपरा को सुदृढ़ करते हुए अन्य भारतीय दार्शनिक मतों की आपत्तियों का उत्तर प्रस्तुत किया। रत्नकीर्ति के विचारों के विश्लेषण द्वारा अपोहवाद के परवर्ती विकास और उसकी आंतरिक दार्शनिक सूक्ष्मताओं को रेखांकित किया गया है। शोध का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष न्याय एवं मीमांसा दर्शन द्वारा अपोहवाद पर की गई आलोचनाओं का विवेचन है, जिसके आलोक में अपोह सिद्धांत की दार्शनिक सीमाओं और सामर्थ्य का मूल्यांकन किया गया है। अंततः इस अध्ययन में अपोहवाद की भाषा–दर्शन और अर्थमीमांसा के क्षेत्र में उपादेयता को स्पष्ट करते हुए यह प्रतिपादित किया गया है कि यह सिद्धांत बौद्ध न्याय परंपरा के भीतर ही नहीं, बल्कि भारतीय दर्शन में शब्दार्थ की समस्या को समझने के लिए एक सुसंगत और वैकल्पिक दृष्टि प्रदान करता है।

शब्दकोशः *अपोहवाद, बौद्ध न्याय परंपरा, शब्दार्थ सिद्धांत, बौद्ध ज्ञानमीमांसा, भाषा–दर्शन, तात्त्विक निषेध।*

प्रस्तावना

भारतीय दर्शन में भाषा और अर्थ का प्रश्न केवल संप्रेषण या व्याकरण तक सीमित नहीं रहा है, अपितु यह ज्ञान, यथार्थ और सत्य की गहन दार्शनिक खोज से भी सम्बद्ध है। प्रश्न यह है कि शब्द किसी वस्तु का अर्थ किस प्रकार व्यक्त करता है। इस प्रश्न का प्रतिपादन प्रत्येक दार्शनिक परंपरा ने अपनी तात्त्विक धारणा के अनुरूप किया है। बौद्ध दर्शन ने इस संदर्भ में अपोहवाद के रूप में एक विशिष्ट दृष्टिकोण प्रस्तुत किया।

* *Copyright © 2025 by Author's and Licensed by Inspira. This is an open access article distributed under the Creative Commons Attribution License which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work properly cited.*

अपोहवाद सामान्य (जाति) की यथार्थ सत्ता को अस्वीकार कर यह प्रतिपादित करता है कि शब्दार्थ की व्युत्पत्ति नकारात्मक भेद एवं पृथक्करण के माध्यम से होती है। यह दृष्टिकोण नैयायिक एवं मीमांसक शब्दार्थ–सिद्धांतों से मौलिक भिन्नता प्रस्तुत करता है।

अपोह की संकल्पना : अपोह क्या है?

उदधृत व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'अपोह' का शाब्दिक अर्थ है 'वह' धातु के पूर्व 'अप्' और बाद मे 'घञ्' प्रत्यय लगाकर बनता है। (अप+वह+घञ) का अर्थ निम्न है– हटाना, दूर करना, विरोपण, निषेधात्मक तर्कणा।

बौद्ध दार्शनिकों के अनुसार शब्द किसी वस्तु में निहित स्थायी सार्वभौमिक का बोध नहीं कराता, अपितु वह वस्तु को अन्य वस्तुओं से पृथक करके अर्थ की व्युत्पत्ति करता है। बौद्ध के मतानुसार जाति की सत्ता नहीं है। एक गाय और दूसरी गाय में 'गाय' नाम के अतिरिक्त और कुछ नहीं है जिसको जाति या सामान्य कहा जा सकें। अतः वे वस्तुओं का ज्ञान अपोह के द्वारा करते हैं। इस प्रकार शब्द का अर्थ नकारात्मक भेद के माध्यम से प्रतिपादित होता है।

यह स्पष्ट किया जाना आवश्यक है कि अपोहवाद अर्थ–निषेध या शून्यवाद नहीं है। बौद्ध दार्शनिक इसे एक व्यवहारिक तथा तार्किक प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत करते हैं, जिसमें शब्दार्थ का सापेक्ष एवं गतिशील स्वरूप प्रकट होता है।

अपोहवाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि

बौद्ध दर्शन का यह सामान्य (अपोह) सिद्धान्त है यह सामान्य सिद्धान्त अन्य भारतीय दर्शनों के सामान्य सिद्धान्त से भिन्न है। भारतीय दर्शन के दार्शनिक सामान्य की समस्या को अपने तत्वमीमांसीय दृष्टिकोण के माध्यम से चिंतन करते है। जबकि बौद्ध दर्शन में इसे 'अपोहवाद' कहा जाता है। इस सिद्धान्त को 'नामवाद' एवं 'अर्थसिद्धान्त' भी कहते है। अपोहवाद में व्यक्ति ही यथार्थ माने जाते है। इसमे व्यक्तियो के अलावा जाति की कोई सत्ता नही मानी जाती। व्यक्ति मे जाति नाममात्र है अर्थात उसकी सत्ता वास्तविक न होकर काल्पनिक है। इसमे जाति का विभेदक अर्थ लिया जाता है। सामान्य या नाम कहने से केवल यह ज्ञात होता है। कि एक नाम वाले पदार्थ अन्य नाम वाले पदार्थ से भिन्न है। इन दार्शनिक विरोधाभास के समाधान हेतु अपोहवाद का प्रतिपादन हुआ, जिसने शब्दार्थ की एक वैकल्पिक, तार्किक और व्यवहार–आधारित व्याख्या प्रस्तुत की।

अपोहवाद का ऐतिहासिक विकास

बौद्ध दर्शन की सामान्य सम्बन्धी अवधारणा 'अपोहवाद' की अवकल्पना में शब्द एवं कल्पना अन्यव्यवच्छेदात्मक स्वरूप अभिधर्म व्याकरण, माध्यमिक दर्शन, एवं महायान सूत्रों में विवक्षित शब्दार्थ विषयक चिन्तन का तार्किक एवं दार्शनिक परिणाम है।

सर्वप्रथम अपोहवाद का प्रतिपादन दिङ्नाग ने **'प्रमाणसमुच्चय'** में किया था। कालांतर में धर्मकीर्ति ने **'प्रमाणवार्तिक'** में शान्तिरक्षित ने **'तत्वसंग्रह'** में तथा रत्नकीर्ति ने '**अपोहसिद्धि'** में इसका प्रतिपादन किया था। आचार्य व्यादि वैयाकरण में यह मानते है कि शब्द परस्पर व्यवच्छेदपूर्वक अभिधेयार्थ का ज्ञान कराता है, क्योंकि शब्द भेदात्मक होता है। व्यादि के अनुसार शब्द का मुख्यार्थ द्रव्य होता है। वाक्य में प्रयोग हुआ शब्द द्रव्यान्तर को निवृत्ति करके अमिधेयार्थ को व्यक्त करता है।'

दिङ्नाग विचार में अपोह

दिङ्नाग के अनुसार अपोह का अर्थ है कि अन्य सर्व प्राणियों की व्यावृत्ति के बाद सम्बद्ध वस्तु का अनुमान से ज्ञान। दिङ्नाग के अनुसार शब्द, संप्रत्यय और नाम किसी वस्तु के अस्तित्व का बोध नहीं कराते। हम मिथ्या धारणावश यह सोचते हैं कि उनसे किसी वस्तु का बोध होता है। वस्तुतः वे प्रतिषेध–मूलक है और किसी वस्तु के अस्तित्व का संकेत उस वस्तु से भिन्न वस्तुओं का निषेध करते हैं।

धर्मकीर्ति के विचार में अपोह

धर्मकीर्ति ने 'अपोह' शब्द को एक नए अर्थ में परिभाषित किया है, उनके अनुसार जिसके द्वारा अपोहन किया जाये, तथा जिससे अर्थबोध में अन्य की निवृत्ति हो जाती है, वह अपोह है प्रत्येक पदार्थ स्वतः अपने में अपोह या व्यावृत्त रहता है यही वस्तु का स्वरूप है।

धर्मकीर्ति ने अपोहवाद को ज्ञानमीमांसा से जोड़ा और उसे दार्शनिक गहराई प्रदान की। उन्होंने स्पष्ट किया कि शब्दार्थ संवृत्ति–सत्य के स्तर पर कार्य करता है तथा व्यवहारिक जीवन में अर्थ–सिद्धि सुनिश्चित करता है।

कमलशील के विचार में अपोह

कमलशील ने तत्त्वसंग्रहपञ्जिका के माध्यम से इस विचार को विस्तारित किया और अपोह को दार्शनिक विमर्श के केंद्र में स्थापित किया। कमलशील के अनुसार वस्तु का मानसिक प्रतिबिम्ब अपोह का मुख्य अर्थ है और अन्य वस्तुओं के मानसिक प्रतिबिम्बों की व्यावृत्ति उसका गौण अर्थ है।

शान्तरक्षित विचार में अपोह

शान्तरक्षित के मतानुसार 'स्वलक्षण' उपचार से शब्द का विषय होता है। शब्द विकल्प प्रतिबिम्बि को उत्पन्न करता है। यह प्रतिबिम्बि ही शब्द का स्वार्थ होता है, स्वलक्षण रूप स्वार्थ मे अर्थान्तर से व्यवच्छिन्न प्रतिबिम्बि की व्यावृत्ति होती है।

शान्तरक्षित इसी आधार पर अपोहवाद का दो भेद करते है– 1. पर्युदास (सापेक्ष अभाव) 2. निषेध या प्रसज्य प्रतिषेध (आत्यन्तिक अभाव)। पर्युदास के भी दो भेद हैं; 1. बुद्धयात्मन् (प्रत्यय–भेद पर आधारित है) और 2. अर्थात्मन् (वस्तु–भेद पर आधारित है)।

तथाहि द्विविद्योऽपोहः पयुदासः निषेधतः।

द्विविधश्र पयुदासोऽपि बुद्धयात्मार्थात्मभेदतः।। (तत्वसंग्रह)

अर्थात् शान्तरक्षित के अनुसार बुद्धयात्मन् ही वास्तविक अपोह है। यही किसी वस्तु का प्रतिबिम्ब उत्पन्न कर वास्तविक वस्तु की भ्रान्ति को जन्म देता है । अत इसे 'अन्यापोह' कहा जाता है।"

रत्नकीर्ति के विचार में अपोह (विशिष्टापोह)

रत्नकीर्ति ने 'अपोह–सिद्धि' में अपोह की एक नई परिभाषा प्रस्तुत की है। उनके अपोह का अर्थ– 'विशिष्टापोह' है और शब्द का अर्थ है– 'अन्य व्यावृत्ति विशिष्ट अपोह।' रत्नकीर्ति कहते हैं कि शब्द न तो पूर्णतया विधि है और न केवल अन्य की व्यावृत्ति ही है किन्तु 'अन्य के अपोह से युक्त विधि' ही शब्द का अर्थ है।

अतः दोनों परस्पर भिन्न पक्षों पर लागू होने वाला दोष निरवकाश हो जाते हैं। इसलिए 'गाय' शब्द से अर्थ का बोध वास्तव में अन्य व्यावृत्त अर्थ का बोध कहा जाता है। यद्यपि अन्य व्यावृत्त का शब्दतः व्यावृत्त अर्थ का बोध कहा जाता है। तथापि विशेषणभूत अन्यापोह का बोध होता ही है क्योंकि 'गाय' शब्द अ–गो–निवृत्ति अर्थ में ही प्रयुक्त होता है।

रत्नकीर्ति के कथन का यह भाव है कि शब्दों के द्वारा न तो पहले अन्वय विधान होता है, तत्पश्चात् अतद्विवृत्ति और न ही पहले अतद्भिवृत्ति तत्पश्चात् अन्वय–विधान। शब्द का अर्थ एक ही साथ अन्वय–व्यतिरेक दोनों होता है। 'गौ' शब्द का अर्थ एक ही समय 'गौ' तथा 'अगो– निषेध' दोनों है।

अपोहवाद एवं शब्द प्रमाण मीमांसा

अपोहवाद शब्दार्थ विषयक चिंतन का तार्किक एवं दार्शनिक परिणाम है। शब्द वस्तु का अभिधान साक्षात रूप से न करके अन्य वस्तुओ का व्यवच्छेद करते हुए करता है। क्योंकि शब्द भेदात्मक होता है।

नागार्जुन के अनुसार वस्तु स्वभाव का शून्यता ही नि–स्वभावता है । शब्द एव कल्पना का विषय स्वभाव शून्य वस्तु होती है, नागार्जुन के अनुसार वस्तु का असाधारण आत्मीय स्वरूप 'स्वलक्षण' या 'स्वभाव' कहलाता है।

अपोह पर विभिन्न दार्शनिक व्याख्याएँ

वस्तुवादियों ने बौद्धों के अपोहवाद की कटु आलोचना की है। यदि सामान्यों की सत्ता का निराकरण किया जाय तो प्रत्येक विशिष्ट वस्तु एक अद्वितीय वस्तु के रूप में समझी जायेगी जिसका कोई सामुदायिक स्वरूप नहीं हो सकता है।

सामान्य की अवधारणा का वस्तुवादी सिद्धान्त

न्याय–वैशेषिक 'सामान्य' को नित्य एवं शाश्वत् पदार्थ मानते हैं जो व्यक्तियों से भिन्न होते हुए भी उनमें समवेत रहता है। विभिन्न विशेषों में एकता की प्रतीति इसी सामान्य के कारण होती है।

वैशेषिक दर्शन के अनुसार 'सामान्य' एक नित्य पदार्थ है जो एक होते हुए भी अनेक विशिष्ट वस्तुओं में वर्तमान रहता है। 'सामान्य' किसी देश–काल में न होते हुए भी द्रव्य, गुण, कर्म इत्यादि में समवेत होते हैं,

मीमांसाक दृष्टिकोण

मीमांसक 'सामान्य' की व्यक्तियों से भिन्न वस्तुगत सत्ता तो स्वीकार करते है किन्तु सामान्य एवं विशेष के मध्य समवाय सम्बन्ध को स्वीकार नही करते हैं जैसा कि न्याय–वैशेषिक दर्शन में स्वीकार किया जाता है ।

सामान्य की अवधारणा का सम्प्रत्ययवादी सिद्धान्त

सम्प्रत्ययवाद में सामान्य को केवल सम्प्रत्यय मात्र स्वीकार किया जिसकी प्रतीति मनुष्य की बुद्धि में होती है। इनके विचार में सामान्य न एक नाममात्र है और न एक विम्ब बल्कि एक सम्प्रत्यय या संकल्पना है वास्तविक जगत में केवल विशेष रहते है, परन्तु हमारे मन में कुछ और चीजें होती है विम्ब नहीं बल्कि सम्प्रत्यय।

जैन के अनुसार प्रत्येक पदार्थ में सामान्य और विशेष दोनों धर्म पाये जाते हैं। अतः प्रत्येक पदार्थ अनुगत प्रत्यय और व्यावृत्ति प्रत्यय का विषय है। विभिन्न व्यक्तियों में जो एकाकार प्रतीति होती है वह सादृश्यास्तित्व के कारण होती है।

वेदान्त में विशेषों के अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया जाता। उनके अनुसार 'सत्ता' के अतिरिक्त अन्य कुछ भी वास्तविक नहीं है, यह ज्ञातव्य है कि बौद्ध 'स्वलक्षण' को ही सत्य मानते हैं अन्य किसी चीज को नहीं। अतः वेदान्तियों का मत बौद्धों के मत से नितान्त भिन्न है।

अपोह सिद्धांत की दार्शनिक उपादेयता

समकालीन संदर्भ में जहाँ भाषा, अर्थ और ज्ञान के प्रश्न पुनःदार्शनिक विमर्श के केंद्र में हैं, अपोह सिद्धांत की प्रासंगिकता और अधिक स्पष्ट हो जाती है। अतः यह कहा जा सकता है कि अपोहवाद न केवल बौद्ध दार्शनिक परंपरा की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है, बल्कि वर्तमान समय में भाषा–दर्शन और ज्ञानमीमांसा से जुड़े प्रश्नों पर पुनर्विचार हेतु भी एक सार्थक दार्शनिक आधार प्रदान करता है। अपोहवाद भाषा को स्थिर और शाश्वत सत्ता से मुक्त करता है तथा यह स्पष्ट करता है कि अर्थ कोई जड़ वस्तु नहीं, अपितु एक गतिशील, व्यवहारिक एवं सापेक्ष प्रक्रिया है। इस प्रकार अपोहवाद बौद्ध दर्शन की मौलिकता एवं शब्दार्थ–मीमांसा में नवीन दिशा का संकेत देता है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से यह प्रतिपादित किया जा सकता है कि अपोहवाद केवल शब्दार्थ–सिद्धांत तक सीमित नहीं है, अपितु यह ज्ञान, भाषा एवं यथार्थ के अन्तर्सम्बन्ध को समझने की एक संपूर्ण बौद्ध पद्धति है। अपोहवाद की प्रमुख विशेषता यह है कि वह सामान्य (सार्वभौमिक) की स्वतंत्र सत्ता को अस्वीकार करते हुए भी

भाषा के व्यवहारिक प्रयोग को सार्थक सिद्ध करता है। इस प्रकार अपोहवाद भाषा को स्थिर तात्त्विक सत्ता के बजाय संज्ञानात्मक और व्यावहारिक प्रक्रिया के रूप में समझने का मार्ग प्रशस्त करता है।

दिङ्नाग से लेकर रत्नकीर्ति तक अपोहवाद का विकास यह दर्शाता है कि यह सिद्धांत भारतीय दर्शन के आन्तरिक विमर्शों में निरंतर समृद्ध हुआ। यही कारण है कि अपोहवाद भारतीय दर्शन में एक महत्वपूर्ण और प्रभावशाली सिद्धांत के रूप में स्थापित हुआ।

इस शोध–पत्र के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि बौद्ध दार्शनिक परंपरा में विकसित अपोह सिद्धांत भाषा और अर्थ के संबंध को समझने का एक मौलिक एवं सुसंगत दार्शनिक प्रतिमान प्रस्तुत करता है। दिङ्नाग से लेकर रत्नकीर्ति तक अपोहवाद का विकास यह दर्शाता है कि यह सिद्धांत न केवल बौद्ध शब्दार्थ मीमांसा का केंद्रीय आधार रहा है, बल्कि विभिन्न दार्शनिक आलोचनाओं के संदर्भ में निरंतर परिष्कृत भी होता रहा है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. रत्नकीर्ति, अपोहसिद्धि अनुवाद और व्याख्या, गोविन्दचन्द्र पाण्डेय, केन्द्रिय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी, 1995
2. अम्बिकादत्त शर्मा, बौद्ध प्रमाण दर्शन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, सागर प्रथम संस्करण, 2007
3. शान्तरक्षित, तत्वसंग्रह (कमलशीलकृत पञ्जिका सहित)
4. दिङ्नाग, प्रमाणसमुच्चय।
5. धर्मकीर्ति, प्रमाणवार्त्तिक (स्ववृत्ति सहित)।
6. दासगुप्ता, सुरेन्द्रनाथ, भारतीय दर्शन का इतिहास, भाग–1, 2, 3, 4, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, विद्यालय मार्ग, तिलक नगर, जयपुर, 1972
7. Bharatiya Nyaya Shastra by Dr. Chakradhar Bijalwan, 1983
8. B.K. Matilal (1990), Perception: An Essay on Classical Indian Theories of Knowledge.
9. Dravid, Raja Ram, The Problem of Universals in Indian Philosophy, Pub, Motilal Banarsidass Publishers, Varanasi, Second Edition, 2001.

❑❑❑